पढ़ने की घण्टी ने बदली विद्यालय की छटा

श्याम सुंदर

स्कूल में बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए किए गए प्रयासों का विवरण इस लेख में है। लेखक बताते हैं कि बहुत-से बच्चों को न तो घर पर प्रिंट-रिच माहौल मिल पाता है, न ही स्कूल में। इसलिए उन्हें पढ़ना और लिखना सीखने में मुश्किलें आती हैं। इस मुश्किल से निपटने के लिए उन्होंने अपने स्कूल में हर दिन एक कालांश सिर्फ़ पढ़ना सीखने के लिए रखा। नियमित रूप से पढ़ते रहने से उनके स्कूल के लगभग सभी बच्चे पढ़ना सीख गए। -सं.

बच्चे को विद्यालय एवं घर, दोनों ही जगह पढ़ने का वातावरण चाहिए। ऐसा वातावरण बच्चों को किताबों की ओर आकर्षित करता है। लेकिन इसके लिए हमारे समाज में बहुत सकारात्मक प्रयास नहीं किए जाते। ऐसे बहुत कम परिवार होंगे जो बच्चों को बेहतर गुणवत्ता का प्रिंट-रिच माहौल दे पाते हैं। इसके साथ ही अच्छी गुणवत्ता का बाल साहित्य महँगा और हाशिए के परिवारों की पहुँच से दूर है। सरकारी विद्यालयों में अधिकांश बच्चे ग़रीब और वंचित तबक़ों से आते हैं, ऐसे में विद्यालय ही एकमात्र स्थान बच जाता है जो बच्चों को अच्छे बाल साहित्य से परिचित करा सकता है।

विद्यालय में किताबें तो होती हैं, पर सवाल यह उठता है कि बच्चों को इन किताबों से कैसे जोड़ा जाए और उनमें पढ़ने की आदत का विकास कैसे हो। शिक्षकों के लिए आयोजित एक कार्यशाला के दौरान मेरे मन में यह विचार आया कि क्यों न विद्यालय में ही पढ़ने का अतिरिक्त समय बच्चों को दिया जाए, जहाँ वे बिना किसी दबाव व रोक-टोक के पुस्तकालय से किताब उठाएँ और पढ़ने का प्रयास करें। वे किताबों को पलटें, चित्र देखें, उनसे बात करें, किताबों को जिएँ और उनसे खेलें। सवाल था, ऐसा कौन-सा समय हो जब बच्चों का पूरा ध्यान उन किताबों में हो?

जैसे बच्चे मोबाइल फ़ोन में गेम खेलते वक़्त ध्यानमग्न हो जाते हैं, भूख, प्यास सब भूल जाते हैं, क्या इसी तरह किताबों के साथ उनका जुड़ाव हो सकता है? यह सवाल बहुत महत्त्वाकांक्षी था। कहना जितना आसान होता है करना उतना ही कठिन, क्योंकि पाठ्यक्रम पूरा करने, अधिकारियों के निरीक्षण, अभिभावकों की अपेक्षा का दबाव, आदि के बीच कुछ अलग करते हुए ऐसा रचनाधर्मी प्रयोग करना वास्तव में कठिन है। इसका एक दूसरा पहलू भी है। आए दिन समाचार पत्रों में शिक्षकों पर आरोप-प्रत्यारोप लगते रहते हैं कि अधिकांश बच्चों को पढ़ना नहीं आ रहा है और भाषा-गणित की आरम्भिक दक्षताओं से बच्चे वंचित हैं।

इस उधेड़-बुन के चलते हुए हमने काम शुरू कर दिया। इस समय स्कूल में बच्चों की कुल संख्या 35 थी। कैसे इन बच्चों को अच्छा पाठक बनाया जाए और इस प्रयास में विद्यालय की क्या भूमिका हो, यह एक चुनौती थी। इस दिशा में पहली बाधा स्कूल में ऐसा समय निर्धारित करने की थी, जब बच्चों का पूरा

ध्यान उन किताबों में हो। इसे ध्यान में रखकर विद्यालय में मध्याह्न भोजन के पश्चात का 30 से 35 मिनट तक का समय बच्चों के स्वतंत्र पठन के लिए तय किया गया। इस वक़्त बच्चे प्रफुल्लित मन से कक्षा में प्रवेश करते हैं। इस कालांश को 'पढ़ने की घण्टी' नाम दिया गया।

पढ़ने की घण्टी की शुरुआत के समय विद्यालय में 200-300 कहानी की किताबें उपलब्ध थीं। इन्हें बच्चों ने कभी भी देखा नहीं था, क्योंकि सारी किताबें एक अलमारी में बन्द थीं। अलमारी में बन्द पड़ी इन किताबों को नन्हे हाथों के स्पर्श का इन्तज़ार था। हमने किताबों को बाहर निकालकर उनका स्तरानुसार चयन किया, और अलमारी साफ़कर उनको अलग-अलग ख़ानों में रख दिया। बड़े बच्चों का एक समूह बनाकर उन्हें एक रजिस्टर दिया गया। कुछ नियम बनाए गए कि किताब कौन ले जा रहा है, कब तक अपने पास रखेगा, पढ़ने के बाद क्या करेंगे, आदि। यह भी तय किया गया कि किसी एक तय दिन बच्चे बारी-बारी से अपनी पढ़ी किताबों से कुछ अंश साझा करेंगे।

पढ़ने की घण्टी के लिए शुरुआत में ऐसी रोचक किताबों रखी गईं, जो पाठ्यक्रम से हटकर थीं, उनमें रंग-बिरंगे चित्र थे, बच्चों के स्तर के अनुसार उनकी लिखावट थी, साथ ही उनमें चित्र ज़्यादा और लिखा कम था। फिर ऐसी किताबें रखी गईं, जिनके शीर्षक सरल और उनके रोज़मर्रा के जीवन से जुड़े हों और उनमें चित्रों के साथ एक-दो पंक्तियाँ लिखी हों। उदाहरण के लिए, *लड्डू, जलेबी, भूत, नटखट गिलहरी* आदि।

बच्चे किताबों को देखकर चुनने लगे, उन्हें पलटने लगे और पढ़ने की कोशिश करने लगे। पर साथ में एक चुनौती से हमें और पार पाना था। पढ़ने की व्यवस्था कैसे बनाई जाए? हमने सोचा कि एक बार बच्चों की दिनचर्या में किताबें आ जाएँ, फिर उनको व्यवस्थित तरीक़े से गोल घेरे में, या जिसमें भी वे सहज महसूस करें, बैठाया जाए ताकि एक बच्चा पढ़े तो दूसरे को बाधा न पहुँचे। कुछ दिनों तक बच्चों के साथ गोल घेरे में बैठकर पढ़ने का ख़ुद भी अभ्यास किया। बच्चों के साथ बैठकर पढ़ने से पढ़ने की एक व्यवस्था बनने लगी। अब शोरग़ुल कम हो रहा था। इस तरह पढ़ने की घण्टी धीरे-धीरे उनकी दिनचर्या का हिस्सा हो गई। बच्चे पढ़ने में रुचि लेने लगे और एक दूसरे को देखकर पढ़ने के लिए प्रेरित होने लगे। कहीं पर कोई बच्चा अटकता तो उसका साथी उसकी मदद भी करता। यह एक मज़ेदार अनुभव था। धीरे-धीरे चर्चा के भी कुछ और नियम बनते चले गए। मसलन, किताब का शीर्षक बताना, उस किताब में किसकी कहानी है, कहानी आपको कैसी लगी और क्यों, किसी पढ़ी हुई कहानी को अपनी बोली में सुनाना, आदि।

यह सब तो चल रहा था, पर साथ में कुछ चुनौतियाँ ऐसी भी थीं जिनका समाधान नहीं मिल पा रहा था। कुछ बच्चे ऐसे थे जिन्हें देखकर लगता था कि शायद उन्हें कभी पढ़ना



चित्र : हीरा धुर्वे

न आए। हालाँकि, ऐसे बच्चों की संख्या 2–3 ही थी, लेकिन उनके साथ भी यह गतिविधि अविरल चलती रही। दो साल तक हमने सतत रूप से नहीं पढ़ पाने वाले उन बच्चों पर काम किया। उन्हें कभी ख़ुद कहानी या कविता पढ़कर सुनाई तो कभी उनके साथियों के साथ उन्हें पढ़ने के लिए बैठाया। उनको आपस में कहानियों पर चर्चा के लिए प्रोत्साहित भी किया। आख़िरकार हमें सफलता मिली। वे बच्चे, जिन्हें देखकर लगता था कि इन्हें कभी पढ़ना नहीं आएगा, अब आनन्द के साथ पढ़ने लगे थे। एक शिक्षक के लिए यह दृश्य कितना सुखद हो सकता है, इसे तो आप महसूस कर ही सकते हैं। बच्चे बार-बार, अलग-अलग किताबें माँगते और पढ़ते-पढ़ते उनमें खो जाते थे। उनकी पढ़ने की गति अब बेहतर हो गई थी। उन्हें देखकर लगा और समझ आया कि बच्चों पर विश्वास से काम करके ही सफलता मिल सकती है, दूसरा कोई विकल्प नहीं है। हमारे प्रयास सहृदय हों, भयरहित और धैर्यपूर्ण हों तो कोई भी बच्चा ऐसा नहीं होगा, जो पढ़ने-लिखने के आधारभूत कौशलों तक न पहुँच पाए।

इसी तरह दो वर्षों तक काम करते हुए ऐसी स्थिति बन चुकी थी कि 99 फ़ीसदी बच्चे पढ़ने के मूलभूत कौशलों से वाक़िफ़ हो चुके थे। कक्षा 1 से 5 तक के अधिकांश बच्चे बिना अटके अर्थ के साथ पढ़ना जान गए थे। इस बीच कुछ समस्याएँ भी आईं, जिन्होंने हमें चकित कर दिया था। कई अभिभावक अपने बच्चों से सिर्फ़ इसलिए सन्तुष्ट नहीं थे क्योंकि उन्हें वर्णमाला क्रम याद नहीं था, लेकिन ये सभी बच्चे किसी भी किताब से कोई अनुच्छेद या पृष्ठ आसानी से पढ़ पा रहे थे। एक अभिभावक ने अपने बच्चे को इसलिए विद्यालय से निकाल लिया क्योंकि उसे न तो अ, आ, क, ख, ग, आदि याद थे, न ही वर्णमाला का क्रम, लेकिन बच्चा पूरी किताब पढ़ने में सक्षम था। बहरहाल, इन सब कठिनाइयों के बावजूद हमने अपना कार्य जारी रखा।

विद्यालय में अब ऐसा वातावरण बन चुका था, जहाँ बच्चे बारी-बारी से किताब बाँटते और पढ़ते थे। विद्यालय में इस वातावरण का प्रभाव कैसा पड़ा, इसकी बानगी चाँदनी है। चाँदनी जन्म से ही दृष्टिबाधित थी। वह रोज़ विद्यालय आती और अपने सारे काम ख़ुद करती। पढ़ने के इस वातावरण में वह भी ढल चुकी थी। वह दूसरे बच्चों की तरह किताब पकड़ती, उन्हें पलटती, दूसरों को पढ़ते हुए सुनती और ताली बजाती। बार-बार यह करने के बाद अब वह भी किताब निकालने के लिए हमसे कहने लगी। हम भी उसे मना नहीं करते। उन किताबों से उसका कोई लेना-देना नहीं था और न ही विद्यालय उसे पढ़ना सिखाने में समर्थ था। तकनीकी रूप से हमारे लिए यह सम्भव भी नहीं था। लेकिन



चित्र : हीरा धुर्वे

वह रोज़ किताब निकालती, दूसरों को सुनती और दोहराती। ऐसा करने से उसे कई कहानियाँ याद हो गई थीं। जब भी उसकी बारी आती, वह कहानी सुनाती। इससे चाँदनी के अन्दर एक आत्मविश्वास भी बना। यह पढ़ने की घण्टी के वातावरण का ही प्रभाव था। हमें कुछ और ऐसी किताबें भी मिल गईं जिनकी कार्यशैली सहज और रोचक थी। अब हमारे पास स्रोतों की बिलकुल भी कमी नहीं थी।

धीरे-धीरे काफ़ी मशक़्क़त के बाद बच्चे अब व्यवस्थित रूप से किताबों को घर भी ले जा सकते थे और उन्हें नियमित रूप से वापस भी ले आते थे। वे अब ख़ुद किताबों का चेक-इन और चेक-आउट करते। उन्हें अब किताबों का खोने, फटने का डर भी नहीं था। इस दौरान हमने एक और प्रक्रिया अपनाई। हमने प्रार्थना सभा में दैनिक समाचार पत्रों को क्रमवार पढ़वाना शुरू किया। इससे बच्चों को नए एवं कठिन शब्दों को पढ़ने का अभ्यास हुआ और उनके शब्दकोश में वृद्धि हुई। थोड़े प्रोत्साहन के बाद बच्चों ने स्वयं विद्यालय का अख़बार निकालना शुरू किया जिसे 'साप्ताहिक बाल अख़बार' नाम दिया गया। बाद में दीवार पत्रिका भी इस कार्य का हिस्सा बनी। इसमें सभी बच्चों की भागीदारी तो नहीं थी किन्तु उन्हें पढ़ने की इच्छा सभी को थी।

हमारे पास कुछ ऐसे बच्चे भी थे, जो चित्रों को देखकर स्वयं कहानी बनाते और सुनाते थे। उनमें से एक बच्चा था जिसे पढ़ना तो नहीं आता था, लेकिन वह अपने मन से चित्रों को देखकर कहानी बनाता था। जब हमें इस बात का पता चला तो हमने उसे केवल चित्र वाली किताबें दीं। उसने उन्हें देखकर चित्रों के क्रम से एक कहानी बनाकर सुनाई। यह घटना वास्तव में आश्चर्यचकित करने वाली थी। केवल चित्रों को पढ़ना सच में अलग तरीक़े से किताब पढ़ना था।



चित्र : हीरा धुर्वे

शिक्षकों ने इस प्रक्रिया में काफ़ी मदद की जिससे बच्चे बिना असहज हुए ख़ुशी-ख़ुशी किताबों के साथ रह सके। हम बच्चों के साथ ख़ुद भी कहानी पढ़ते, जहाँ वे अटकते, वहाँ उनकी मदद करते, उन्हें बारी-बारी से पढ़ने को कहते और शाबाशी देते। कई बार सबसे अच्छी कहानी सुनाने की प्रतियोगिता का भी आयोजन हुआ। इस प्रक्रिया में हमने स्कूल की एक 'बिग बुक' भी तैयार की।

पढ़ने के सही मायने यही हैं कि हम शब्दों, वाक्यों को समझकर पढ़ें। पढ़ने की घण्टी ने इस प्रक्रिया तक पहुँचने में बच्चों की बहुत मदद की। हमने यह प्रयोग स्कूल में पढ़ाई जा रही अन्य भाषाओं के लिए भी किया और यह कोशिश आज भी जारी है...

श्याम सुंदर आर्या को शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने का 10 वर्ष का अनुभव है। आपने स्नातकोत्तर के साथ ही विशेष डीएलएड एवं बीएड किया है। उन्हें बच्चों के साथ नए-नए काम करना और उनकी शिक्षा के बारे में लिखना अच्छा लगता है। वर्तमान में राजकीय प्राथमिक विद्यालय, व्हीलकुलवान, ब्लॉक गरुड़, बागेश्वर में प्रधान अध्यापक के पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : shyamarya.uk@gmail.com